सुदं मे आउस्संतो !

(श्री गौतम गणधर देव प्रणीत चतुर्थकालीन वाणी)

प्रवचन मुद्रा में श्री गौतम गणधर स्वामी

हिन्दी अनुवाद
गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 460
ISBN-978-93-84003-72-2

सुदं मे आउस्संतो!

(श्री गौतम गणधर देव प्रणीत)

–हिन्दी अनुवाद –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
गौतम गणधर वर्ष (सन् 2014-2015) के समापन
(श्रावण कृ. एकम्, 1 अगस्त 2015) के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.encyclopediaofjainism.com,
www.highestjainidolinworld.com, www.jambudweep.org,
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541	मूल्य
2200 प्रतियाँ	श्रावण कृ. एकम्, 1 अगस्त 2015	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रस्तावना

–आर्यिका चन्दनामती

प्रिय पाठकों! "सुदं में आउस्संतो" नाम की यह लघुकाय पुस्तक आपके हाथों में है। यह छोटी होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य श्री गौतम गणधर स्वामी के साक्षात् मुख से निर्गत वाणी में गृहस्थधर्म का वर्णन है।

हम सबके लिए यह विशेष ज्ञातव्य है कि श्री गौतम गणधर स्वामी भगवान महावीर के समवसरण में ३० वर्ष तक रहे और उनकी दिव्यध्वनि का साक्षात् पान करके द्वादशांग श्रुत की रचना किया जिनके अंशरूप में वर्तमान में चतुरनुयोगरूप जिनवाणी उपलब्ध है। इसके साथ ही उनके द्वारा रचित कुछ रचनाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

चैत्यभक्ति आदि रचनाएँ श्री गौतमस्वामी प्रणीत हैं, इनके प्रमाण देखिए—

चैत्यभक्ति के प्रारंभ में टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य कहते हैं—

"श्री वर्धमानस्वामिनं" प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह—

श्रीवर्धमान को प्रत्यक्ष देखकर-उनका प्रथम दर्शन प्राप्तकर श्री गौतमस्वामी स्तुति करते हुए हरिणी छंद में कहते हैं—

"**जयति भगवान्**".....इत्यादि।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

"श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवता–विशेषं नमस्करोति—

'**श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे**" इत्यादि।

इन उद्धरणों से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

श्री गौतम स्वामी की मूल रचनाएँ चार हैं—

१. श्री चैत्यभक्ति २. दैवसिक प्रतिक्रमण ३. पाक्षिक प्रतिक्रमण, ४. श्रावक प्रतिक्रमण।

इनमें से पाक्षिक प्रतिक्रमण में से यह "सुदं में आउस्संतो" पाठ यहाँ पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती मातजी ने प्रस्तुत करके गृहस्थ श्रावक-श्राविकाओं पर बहुत उपकार किया है। इसके माध्यम से आप सभी को चतुर्थकालीन दिव्यवाणी (जो साक्षात् महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि से संबंधित है) का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

इसमें श्रावकों के १२ व्रत, ग्यारह प्रतिमा आदि का वर्णन करते हुए कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव १८ स्थानों में नहीं जाता है और १६ स्वर्गों तक उनके जन्म लेने में कोई बाधा नहीं है। इसे पढ़कर आप सभी गौतम स्वामी के शब्दों को अपने जीवन में चरितार्थ करें, यही मंगल भावना है।

णमोकार महामंत्र एवं चत्तारिमंगल पाठ

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

इसलिए ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'—नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है। यह पाठ सन् १९७४ के बाद में अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण—'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् १९६३ से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. २०५४ तक में प्रकाशित है। पृ. ३०९ पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. २४५१ में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ ४० पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. २४५२ में प्रकाशित है। उसमें पृ. ८१ पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. २४४३ में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. २४६२ में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं-अरहंत लोगुत्तमा,..... अरहंत सरणं पव्वज्जामि, यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है। क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

नया पाठ—

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं...., अरहंता लोगुत्तमा....., अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि.....।

यह पाठ सन् १९७४ से आया है ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि विद्वानों ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्द्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

–गणिनी ज्ञानमती

सुदं मे आउस्संतो !

(श्रावक धर्म)

श्री गौतम गणधरदेव प्रणीत

(प्राकृत एवं पद्यानुवाद)

श्रीगौतमस्वामी उवाच—

श्री गौतमस्वामी कहते हैं–

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदि-महावीरेण महा-कस्सवेण सव्वण्ह-णाणेण सव्व-लोय-दरसिणा सावयाणं साावियाणं खुड्डुयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादि-वादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्ता-दाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे

पद्यानुवाद–शंभु छंद

हे आयुष्मन्तों ! पहले ही यहाँ मैंने सुना वीर प्रभु से।
उन महाश्रमण भगवान् महतिमहावीर महाकाश्यप जिन से।।
सर्वज्ञज्ञानयुत सर्वलोकदर्शी उनने उपदेश दिया।
श्रावक व श्राविका क्षुल्लक अरु क्षुल्लिका इन्हों के लिए कहा।।१।।

ये पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चउ शिक्षाव्रत बारह विध।
हैं सम्यक् श्रावक धर्म इन्हीं, में जो ये अणुव्रत पांच कथित।।
पहला अणुव्रत स्थूलतया, प्राणीवध से विरती होना।
दूजा अणुव्रत स्थूलतया, असत्यवच से विरती होना।।२।।

सदारसंतोस-परदारा-गमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविध-अणत्थ-दण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहो-वासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंधमोक्ख-महिकुसले धम्माणु-रायरत्तो पि माणु-रागरत्तो (पेम्माणुरागरत्तो) अट्ठि-मज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव

तीजा अणुव्रत स्थूलतया, बिन दी वस्तू को नहिं लेना।
चौथा अणुव्रत स्थूलतया परदारा से विरती होना।।
निजपत्नी में संतुष्टी या सब स्त्रीमात्र से रति तजना।
पंचम अणुव्रत स्थूलतया इच्छाकृत परीमाण धरना।।३।।

त्रय गुणव्रत में पहला गुणव्रत, दिश विदिशा का प्रमाण करना।
दूजा गुणव्रत नाना अनर्थ दण्डों से नित विरती धरना।।
तीजा गुणव्रत भोगोपभोग, वस्तू की संख्या कर लेना।
ये तीन गुणव्रत कहे, पुनः चारों शिक्षाव्रत को सुनना।।४।।

पहला शिक्षाव्रत सामायिक दूजा प्रोषध उपवास कहा।
तीजा है अतिथि संविभाग चौथा सल्लेखनमरण कहा।।
शिक्षाव्रत चार कहे पुनरपि, अभ्रावकाश तृतीयव्रत है।
जघन्य श्रावक से उत्तम तक, ये बारह व्रत तरतममय हैं।।५।।

इसमें अभिमत जीव रु अजीव उपलब्ध पुण्य अरु पाप कहे।
आस्रव संवर निर्जर व बंध अरु मोक्ष कुशल नव तत्त्व रहें।।
इनमें धर्मानुराग से रत प्रेमानुराग में रागी हो।
अस्थीमज्जा के सदृश धर्म के, अनुराग में रागी हो।।६।।

णिग्गंथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे।

णिस्संकिय-णिक्कंखिय, णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं, वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ।।१।।

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खा-वदाणि वारसविहं गिहत्थधम्म-मणुपाल-इत्ता-

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण-मुद्दिट्ठ देसविरदो य।।२।।
महु-मंस-मज्ज-जूआ, वेसादि-विवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वय-जुत्तो, सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो।।३।।

जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साावियाओ वा खुड्डुय खुड्डियाओ वा अट्ठदह*-भवण-वासिय-वाणविंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-देवीओ

ममतापूर्वक गृहीत वस्तु में, गृहीत वस्तु अरु कृतवस्तू में।
अपने पालन किये पदार्थ में, अपने सेवित सुपदारथ में।।
निर्ग्रंथों के भी प्रवचन में, उत्तम अरु हितकर पदार्थ में।
सेवन की प्रवृत्ती रूप क्रिया में दोष हुए सो मिथ्या हों।।७।।

निःशंकित निःकांक्षित अरु निर्विचिकित्सा अमूढ़दृष्टी हैं।
उपगूहन स्थितीकरण वात्सल प्रभावना अठ अंग कहे।।
ये सभी पांच अणुव्रत त्रयगुणव्रत चउ शिक्षाव्रत माने हैं।
बारहविध गृहस्थधर्मों का अनुपालन श्रावक करते हैं।।८।।

दर्शनव्रत सामायिक प्रोषध सचित्तत्याग निशिभुक्ति त्यजी।
ब्रह्मचर्य व आरंभ परिग्रह अनुमति उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रती।।
मधु मांस मद्य जुआ वेश्यादिक व्यसनविवर्जनशील गृही।
पंचाणुव्रतयुत शिक्षाव्रत आदिक सातों से जो पूर्ण वही।।९।।

जो श्रावक और श्राविका या क्षुल्लक व क्षुल्लिका इन व्रत को।
धारण कर अठरहस्थान व भावन व्यंतर में नहिं जाते वो।
ज्योतिषियों में सौधर्म ईशान देवियों में नहिं जाते हैं।
उपरिम वैमानिक देवों में वे महाऋद्धिधर होते हैं।।१०।।

वदिक्क-मित्तउवरिम-अण्णदर-महड्ढियासु देवेसु उव्वज्जंति।

तं जहा—सोहम्मी-साण-सणक्कुमार-माहिंद-बंभबंभुत्तर-लांतवकापिट्ठ-सुक्क-महासुक्क-सतार-सहस्सार-आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबर-सत्थधरा, कडयंगद-बद्धनउड-कयसोहा।
भासुर - वर - बोहिधरा, देवा य महड्ढिया होंति।।४।।

उक्कस्सेण दोतिण्णि-भव-गहणाणि जहण्णेण सत्तट्ठभव-गहणाणि तदो सुमणु-सुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था[१] पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्व-दुक्खाणमंतं करेंति।

वह यह सौधर्मैशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म दिव में।
ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ रु शुक्र अरु महाशुक्र दिव में।।
पुनि शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत दिव में।
इन सोलह स्वर्गों मे ही ये सदृष्टि सचेलक उपजत हैं।।११।।

वे कटक व बाजूबन्द मुकुट से युत आडंबर शस्त्र धरें।
भासुरवर बोधि धरें बहु ऋद्धी सहित महर्द्धिक देव बनें।।
उत्कृष्टपने से दो त्रय भव व जघन्य से सात आठ भव लें।
फिर मानव से देवपद ले सुदेवपद से सुमनुष्य भव लें।।१२।।

फिर सद्गृहस्थ[२] निर्ग्रंथ मुनी हो सिद्ध-बुद्ध हो जाते हैं।
मुक्ती पाते कृतकृत्य बने सब दुःखों का क्षय करते हैं।।
जब तक मुनिव्रत नहीं धरूँ, मुनियों को वंदन करता हूँ।
सर्व दुःखों का अंत करूँ, शिवपद की वाञ्छा करता हूँ।१३।।

---

* १. पृथ्वी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. वनस्पति, ६. दोइन्द्रिय, ७. तीन इन्द्रिय, ८. चार इन्द्रिय, ९. निगोद, १०. असंज्ञी पंचेन्द्रिय, ११. कुभोगभूमि, १२. म्लेक्षज, १३. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, १४. नारकी, १५. नपुंसक, १६. स्त्री, १७. सुभोग भूमि, १८. ओर मनुष्य इन अठारह स्थानों में अणुव्रती नहीं जाते हैं एवं भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों में भी अणुव्रती नहीं जन्मते हैं। १. साधितार्थाः छाया संभव है। २. यहाँ 'साइहत्था' का अर्थ 'सद्गृहस्थ' किया है किन्तु 'साधितार्थ' भी संभव है।

सुदं मे आउस्संतो !

(श्रावक धर्म-हिन्दी अनुवाद)

श्रीगौतमस्वामी कहते हैं–

''पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो।''

हे आयुष्मन्तों भव्यों ! मैंने प्रथम ही सुना है।

क्या सुना है ?

''**गिहत्थधम्मं**'' गृहस्थ धर्म सुना है। किनसे सुना है ?

इह खलु– ''**भयवदा महदिमहावीरेण**'' यहां (विपुलाचल पर्वत पर) भगवान महतिमहावीर के श्रीमुख से सुना है। ये भगवान महावीर कैसे हैं ?

समणेण महाकस्सवेण सवण्हणाणेण सव्वलोयदरसिणा।'' जो श्रमण हैं, महाकाश्यप गोत्र में जन्में हैं, सर्वज्ञानी हैं और सर्वदर्शी हैं ऐसे भगवान महावीर ने उपदेश दिया है और हमने सुना है।

किसके लिये उपदेश दिया है ? ''**सावयाणं साावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण।**''

श्रावक और श्राविकाओं के लिये तथा क्षुल्लक और क्षुल्लिकाओं के लिए उपदेश दिया है।

क्या उपदेश दिया है ? ''**पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसिदाणि।**'' पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थधर्म का सम्यक् उपदेश दिया है।

वे गौतमस्वामी उस पाक्षिक यतिप्रतिक्रमण में उपर्युक्त पंक्तियों को कह रहे हैं कि–

"हे आयुष्मन्तों ! मैंने सुना है–महाकाश्यप गोत्रीय, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, श्रमण भगवान् महावीर ने श्रावक, श्राविका, क्षुल्लक और क्षुल्लिका इनके लिये पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म का सम्यक् उपदेश दिया है।"

यहाँ पर ये पंक्तियाँ बहुत ही महत्व की हैं क्योंकि श्रीगौतमस्वामी मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चारों ज्ञान से सहित थे। बुद्धि, ऋद्धि आदि सात प्रकार की ऋद्धियों से समन्वित थे। जिन्होंने कुछ दिन कम तीस वर्ष तक बराबर श्री महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि को सुना था तथा जिन्होंने स्वयं ही ग्यारह अंग और चौदह पूर्वरूप से ग्रंथ रचना की थी ऐसे महान् गणधर पूर्ण प्रामाणिक श्री गौतमस्वामी गौरवपूर्ण शब्दों में स्वयं कह रहे हैं कि "मैंने सुना है" तथा अतीव कोमल और प्रिय शब्दों में भक्तों को संबोधित करते हुए कह रहे हैं कि "हे आयुष्मन्तों ! मैंने सुना है।" इन शब्दों से श्री गणधरदेव गृहस्थ धर्म को भगवान् महावीर द्वारा कथित सिद्ध कर रहे हैं, जो कि बारह व्रतरूप है। इन बारह व्रतों में स्वयं गौतमस्वामी के शब्दों में ही आप उनके नाम देखिये–

''तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोस परदारागमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकदपरिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।।''

अमृतवर्षिणी टीका–

पांच अणुव्रत

उन बारह व्रतों में से पहले पाँच अणुव्रत हैं। पहले अणुव्रत में स्थूलरूप से प्राणी–हिंसा से विरति है। दूसरे अणुव्रत में स्थूलरूप से असत्य से विरति है। तीसरे अणुव्रत में स्थूलरूप से बिना दिये हुये परद्रव्य से विरति है। चौथे अणुव्रत में स्वदार संतोष है अर्थात् अपनी विवाहिता स्त्री में सन्तोष है और परस्त्री से विरति है इसीलिये यह स्थूलरूप से व्रत है अथवा किसी–किसी की सम्पूर्ण स्त्रीमात्र से ही विरति है। पाँचवें अणुव्रत में अपनी इच्छा के अनुसार परिग्रह का परिमाण किया गया है। इसलिये इसमें भी परिग्रह का पूर्ण त्याग न होने से स्थूलरूप से विरति है। इसीलिये ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं।

बारह व्रतों के अंतर्गत तीन गुणव्रत का वर्णन करते हुये श्री गौतमस्वामी कहते हैं–

''तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिस पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविधअणत्थदण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोगपरिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।।''

तीन गुणव्रत

उन बारह व्रतों के अंतर्गत ये तीन गुणव्रत हैं। उनमें से पहले गुणव्रत में दिशा–विदिशाओं का प्रत्याख्यान (नियम) किया जाता है। दूसरे गुणव्रत में विविध प्रकार के अनर्थदण्ड से विरति होती है। तीसरे गुणव्रत में भोग–उपभोग वस्तुओं का परिसंख्यान—परिमाण किया जाता है। इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं।

पुनः आगे चार शिक्षाव्रतों को कहते हैं–

''तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामायियं, विदिए पोसहोवासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिमसल्लेहणामरणं तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

चार शिक्षाव्रत

उन बारह व्रतों के अंतर्गत ये चार शिक्षाव्रत हैं। उनमें से प्रथम सामायिक शिक्षाव्रत है, दूसरा प्रोषधोपवास व्रत है, तीसरा अतिथिसंविभाग व्रत है और चौथा अंत में सल्लेखनामरण नाम का शिक्षाव्रत है, इस प्रकार ये चार शिक्षाव्रत हैं। इसमें **'तिदियं अब्भोवस्साणं'** का अर्थ समझ में नहीं आया है।

विशेषार्थ–

श्रीकुंदकुंददेव ने भी अपने चारित्रपाहुड़ ग्रंथ में गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के ये ही नाम कहे हैं। श्री उमास्वामी आचार्य और श्री समंतभद्र स्वामी ने इन सात व्रतों के क्रम में कुछ अंतर रखा है। यथा–**''दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिक-प्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रत–संपन्नश्च।।२।।**

दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डविरति, ये तीन गुणव्रत हैं। सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग– परिभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं।

श्रीसमंतभद्रस्वामी के शब्दों में अन्तर देखिये–

दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोगपरिमाण व्रत ये तीन गुणव्रत हैं। देशावकाशिकव्रत, सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं।

श्रीउमास्वामी आचार्य और श्रीसमंतभद्रस्वामी ने इन बारह व्रतों का वर्णन करने के बाद अंत में सल्लेखना का वर्णन किया है किन्तु श्री गौतमस्वामी ने दिग्व्रत–देशव्रत को एक में ही शामिल कर अतिथिसंविभाग को तृतीय शिक्षाव्रत में लेकर सल्लेखना को चतुर्थ शिक्षाव्रत में ही ले लिया है।

''पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हणाणेण सव्वलोयदरिसिणा सावयाणं साावियाणं खुड्डयाणं खुड्डियाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारहविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि।।''

श्रावक के बारह व्रत धर्म हैं

हे आयुष्मन्तों भव्यों ! प्रथम ही मैंने सुना है। यहां भरतक्षेत्र के आर्यखंड में महाकाश्यपगोत्री, सर्वज्ञानी, सर्वलोकदर्शी, श्रमण, भगवान महतिमहावीर ने श्रावक–श्राविकाओं और क्षुल्लक–क्षुल्लिकाओं के लिए पंच अणुव्रत आदि बारहविध गृहस्थ धर्म (श्रावक धर्म) का सम्यक् प्रकार से उपदेश दिया है।

नव पदार्थों के नाम

से अभिमद–जीवाजीव–उवलद्ध–पुण्णपाव–आसव–संवर–णिज्जर–बंधमोक्ख–महिकुसले धम्माणु–रायरत्तो पि माणु–रागरत्तो (पेम्माणुरागरत्तो) अट्ठि–मज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथापावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे।

अर्थ—उपर्युक्त बारह व्रतों का धारक-जिसने जीव-अजीव तत्त्व को समझ लिया है तथा जिसने पुण्य-पाप, आस्रव-बंध, संवर-निर्जरा और मोक्ष इन तत्त्वों को उपलब्ध कर लिया है ऐसे नव पदार्थों के विषय में अभिकुशल-निपुण व्यक्ति में धर्मानुराग से अनुरक्त होकर भी माँ-लक्ष्मी के अनुराग में रक्त है। (गृहस्थ होने से परिग्रह का त्यागी नहीं है) एवं अस्थिमज्जा के समान अनुराग से रक्त है। (जिस प्रकार सात धातुओं में अस्थि-हड्डी मज्जा नामक धातु से निरन्तर संलग्न रहती है उसी तरह सह-धर्मियों के साथ प्रीति का होना ऐसी सघन प्रीति को अस्थिमज्जा प्रीति कहते हैं।) ऐसा गृहस्थ मूर्च्छितार्थ—

ममतापूर्वक ग्रहण किये गये पदार्थ में, गृहीतार्थ—सामान्य रूप से ग्रहण किये गये पदार्थ में, विहितार्थ—अपने द्वारा किये गये पदार्थ में, पालितार्थ—अपने द्वारा पालन किये गये पदार्थ में, सेवितार्थ—अपने द्वारा सेवित-उपयोग में आने वाले पदार्थ में, निर्ग्रंथ प्रवचन—मुनियों के प्रवचन में, अनुत्तर—सर्वश्रेष्ठ, श्रेयो–कल्याणकारी पदार्थ में, सेवितार्थ—सेवन प्रवृत्तिरूप क्रिया में (प्रमाद से जो हुआ हो वह मिथ्या होवे) ऐसा अभिप्राय है।

उसी के अन्तर्गत–

सम्यक्त्व के ८ अंगों के नाम

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं वच्छल्लपहावणा य ते अट्ठ।।

निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अंग हैं।

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्ममणुपालइत्ता-

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम

दंसण वय सामाइय पोसह सचित राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य।।

ये पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलकर बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म है। इनका पालन करते हुए श्रावक क्रम से ग्यारह स्थानों को प्राप्त करते हैं। दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्त त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ निवृत्ति, परिग्रह विरति, अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग ये देशव्रत के ग्यारह स्थान हैं।

भावार्थ—श्रीगौतमस्वामी ने यहां इन बारहव्रतों को गृहस्थ का धर्म कहा है।

तथा जो ग्यारह स्थान बताए हैं, इन्हें प्रतिमा भी कहते हैं। इनमें से दर्शन प्रतिमा से लेकर रात्रिभुक्त त्याग प्रतिमा तक—छह प्रतिमा तक के व्रत ग्रहण करने वाले श्रावक गृहस्थ हैं, इन्हें जघन्य श्रावक संज्ञा है। ब्रह्मचर्य व्रत से लेकर परिग्रह विरति तक मध्य के तीन प्रतिमा वाले मध्यम श्रावक हैं तथा

अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा वाले उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमाधारी तो क्षुल्लक–ऐलक ही होते हैं।

आगे श्री गौतमस्वामी कहते हैं–

आठ मूलगुण धारण एवं सात व्यसन का त्याग

महुमंसमज्जजूआ वेसादिविवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वयजुत्तो सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो।।

मधु, मांस, मद्य, जुआ और वेश्या आदि व्यसन इनको त्याग करने वाला, पाँच अणुव्रतों से युक्त तथा सात शिक्षाव्रतों से परिपूर्ण गृहस्थ होता है। यहाँ मद्य, मांस, मधु के त्याग का आदेश दिया है–

जुआ खेलना मांस मद, वेश्यागमन शिकार।
चोरी पररमणीरमण, सातों व्यसन निवार।।

इस प्रकार जुआ और वेश्या आदि शब्द से सातों व्यसनों के त्याग का उपदेश दिया गया समझना चाहिए।

यहाँ महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि गौतमस्वामी जैसे चारज्ञानधारी, सप्तऋद्धि समन्वित, तद्भवमोक्षगामी, गणधरदेव स्वयं गृहस्थ श्रावक को आत्मा–आत्मा का ही उपदेश न देकर मद्य, मांस,, मधु त्याग और जुआ आदि व्यसनों के त्याग का उपदेश दे रहे हैं तथा इसे ही वे गृहस्थों के लिए 'धर्म' शब्द से घोषित कर रहे हैं। जो आज इस त्याग की परम्परा को 'धर्म' नहीं कहते हैं उन्हें इन पंक्तियों को देखना चाहिए। ये पंक्तियां साक्षात् गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं।

पुनः वे स्वयं इस गृहस्थ धर्म के फल को बतलाते हुए कहते हैं—

'जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया साावियाओ वा खुड्डुय, खुड्डियाओ वा अट्ठदह भवणवासियवाण–विंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तं उपरिम अण्णदरमह–ड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।'

जो श्रावक, श्राविकायें अथवा क्षुल्लक–क्षुल्लिकायें इन व्रतों को धारण करते हैं वे अठारह स्थान भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों का व्यतिक्रम कर ऊपर में अन्य किन्हीं भी महर्द्धिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि और व्रती चाहे स्त्री हों या पुरुष, वे भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देव–देवियों में जन्म नहीं लेते हैं तथा सौधर्म–ईशान स्वर्ग की देवियों में भी जन्म नहीं लेते हैं। अर्थात् कल्पवासी देवों की देवियां दो स्वर्ग तक ही जन्म लेती हैं। आगे तीसरे से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक के देव अपनी–अपनी देवियों की उत्पत्ति ज्ञातकर आकर अपने–अपने स्वर्ग में ले जाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव कल्पवासी देवियों में भी जन्म नहीं लेते हैं। इनसे अतिरिक्त सोलह स्वर्गों में विशेष ऋद्धिधारी देवों में जन्म लेते हैं।

सम्यग्दृष्टि कहां–कहां जन्म लेते हैं ? सो ही बताते हैं—

तं जहा–सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबंभबंभुत्तरलांतवकापिट्ठ-सुक्कमहासुक्कस–तारसहस्सार–आणतपाणतआरणअच्चुदकप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबरसत्थधरा, कडयंगदबद्धनउडकयसोहा।
भासुरवरबोहिधरा, देवा य महड्ढिया होंति।।

सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन कल्पों में उत्पन्न होते हैं।

वहां नाना प्रकार के वस्त्र–आभरण–कटक, अंगद, मुकुट आदि से शोभायमान, दिव्य वैक्रियिक शरीर के धारक और देदीप्यमान बोधि के धारक महर्द्धिक देव होते हैं।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि वस्त्र सहित क्षुल्लक, ऐलक आदि जो कि संयमासंयम को धारण करने वाले पंचमगुणस्थानवर्ती हैं ये सोलह स्वर्ग के ऊपर नहीं जा सकते हैं। इन कल्पों के ऊपर दिगम्बर मुनि ही जाते हैं। भले ही कोई द्रव्यलिंगी ही क्यों न हो वह भी अंतिम ग्रैवेयक तक जाने की योग्यता रखता है। यहाँ पर तो गृहस्थधर्म की महानता को बतलाया है।

पुनः श्री गणधरदेव कहते हैं–

उक्कस्सेण दो तिण्णि भवगहणाणि जहण्णेण सत्तट्ठभवगहणाणि तदो समणुसुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाण-

मंतं करेंति[१]।'

ये श्रावक या श्राविका अथवा क्षुल्लक या क्षुल्लिका उत्कृष्टपने से दो या तीन भव ग्रहण करते हैं, जघन्यरूप से सात या आठ भव ग्रहण करते हैं। इन भवों में भी सुमनुष्यत्व से सुदेवत्व–अच्छे, कुलीन, श्रेष्ठ, राजा, महाराजा आदि मनुष्य होकर उत्कृष्ट जाति के देव हो जाते हैं। सुदेवत्व से सुमनुष्यत्व को प्राप्त कर लेते हैं पुनः अन्तिम भव में नियम से निर्ग्रंथ मुनि होकर सिद्ध हो जाते हैं, बुद्ध हो जाते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं और सभी दुःखों का अंत कर देते हैं।

विशेषार्थ—यह है गृहस्थ धर्म का फल, श्री गणधर देव के शब्दों में। अतः गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थधर्म का पालन करना कितने महत्व की बात है यह समझना आवश्यक है। वास्तव में जो गृहस्थ, मद्य, मांस आदि के त्यागी होते हैं, जुआ आदि दुर्व्यसनों से दूर रहते हैं और अणुव्रतों का पालन करते हैं। वे घर में रहते हुए भी बहुत ही सुखी रहते हैं। राजनैतिक अन्याय न करने से उन्हें मानसिक शांति बनी रहती है। सर्वत्र प्रशंसा के पात्र होते हैं और सभी जनों में विश्वस्तता को भी प्राप्त कर लेते हैं। इन धर्मों से युक्त गृहस्थों को सर्वत्र सुख, शांति, यश और धन की वृद्धि आदि प्राप्त होते हैं तथा परभव में स्वर्ग के सुख भोगकर पुनः चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि के भी पुण्य को प्राप्त कर परम्परा से मोक्ष को प्राप्तकर शाश्वत सुख के भोक्ता बन जाते हैं। इसलिए गृहस्थाश्रम में रहते हुए प्रत्येक स्त्री या पुरुष को अणुव्रत आदि गृहस्थधर्मों का पालन करना बहुत ही आवश्यक है, सर्वथा हितकर ही है ऐसा समझना चाहिए क्योंकि यह धर्म भगवान महावीर ने अपनी दिव्यध्वनि में कहा है और श्री गौतमस्वामी ने तीस वर्ष तक उनके पादमूल में रहकर उनसे श्रवण किया है और परमकरुणा बुद्धि से गृहस्थों के लिए कहा है।

इस गृहस्थधर्म के पाठ में एक स्थान पर–

"**खुड्डय खुड्डियाओ वा अट्ठदह भवणवासिय**....." आदि पाठ में 'अट्ठदह' पाठ का यह अर्थ समझ में नहीं आ रहा था।

एक बार सन् १९५८ में आचार्य श्रीशिवसागर जी महाराज के समक्ष इस

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण।

"अट्ठदह" शब्द पर विशेष चर्चा हुई। अनेक विद्वान् पं. श्रीलालजी शास्त्री, पं. पन्नालाल जी सोनी आदि उपस्थित थे। मुनि श्री श्रुतसागरजी आदि साधु व आर्यिका वीरमती जी आदि आर्यिकायें तथा मैं भी उपस्थित थी। चर्चा हुई कि अठारह स्थान ऐसे ढूंढने चाहिये जहाँ व्रती नहीं जाता हो तथा उन अठारह स्थानों में ये भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान की देवियाँ नहीं आनी चाहिए चूँकि इन्हें पृथक् से लिया है। तभी उमास्वामी श्रावकाचार के दो श्लोक स्मृतिपथ में आ गये, वे ये हैं—

सम्यक्त्वसंयुतः प्राणी, मिथ्यावासेन जायते।
द्वादशेषु च तिर्यक्षु, नारकेषु नपुँसके।।८८।।

स्त्रीत्वे च दुष्कृताल्पायु-दारिद्र्यादिकवर्जितः।
भवनत्रिषु षट्भूषु, तद्देवीषु न जायते।।८९।।

सम्यक्त्व से सहित जीव मिथ्यात्व के निम्नस्थानों में नहीं जाता है—

१. पृथ्वीकायिक २. जलकायिक ३. अग्निकायिक ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक ६. दो इंद्रिय ७. तीन इंद्रिय ८. चारइंद्रिय ९. निगोद १०. असंज्ञीपंचेन्द्रिय ११. कुभोगभूमि और १२. म्लेच्छखंड, मिथ्यात्व के इन बारह स्थानों में उत्पन्न नहीं होता है। तथा १३. तिर्यचों में १४. नरकों में १५. नपुंसक में और १६. स्त्रीवेद में उत्पन्न नहीं होता है।

पुनः पापी, अल्पायु, दारिद्रादि से वर्जित रहता है। यह सम्यग्दृष्टी भवनत्रिकों में, प्रथम नरक से अतिरिक्त छह नरकभूमियों में व स्वर्ग की देवियों में भी नहीं जाता है।

चर्चा में यह बात और आई कि यहाँ प्रतिक्रमण में तो व्रतिक श्रावकों के लिए कथन है अतः व्रतीजन तो सुभोगभूमि और मनुष्य पर्याय में भी नहीं जाते हैं क्योंकि गाथा है कि—

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। (गोम्मटसार कर्मकांड)

अणुव्रती और महाव्रती तो देवायु के सिवाय अन्य किसी आयु का बंध ही नहीं कर सकता है। इसलिये उपर्युक्त १६ स्थानों में, १७. सुभोगभूमि और १८. मनुष्य इन दो स्थानों को मिला देने से अठारह स्थान हो जाते हैं। व्रतिक व

क्षुल्लक-क्षुल्लिका इनमें नहीं जाते हैं।

ये अठारह स्थान आ. श्रीशिवसागरजी महाराज को भी बहुत ही संगत प्रतीत हुये थे। तभी से इस पाठ के परिवर्तन व संशोधन आदि की चर्चा समाप्त हो गई थी।

क्रियाकलाप ग्रंथ में प्राचीन पाठ ऐसा है—

"**अट्ठदहभवणवासियवाणविंतरजोइसिय .....**" (क्रियाकलाप पृ. १०८)

वर्तमान में 'श्रमणचर्या' आदि पुस्तकों में पाठ बदल कर ऐसा लिखा है—

"**दहअट्ठपंच भवणवासियवाणविंतरजोइसिय .....** "(श्रमणचर्या, पृ. १६०)

आश्चर्य है कि गौतम स्वामी जैसे महान गणधरदेव की कृति में यह परिवर्तन किया गया है। मूल पाठ में ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। यदि आपको या किन्हीं भी विद्वानों को कोई भी पाठ गलत या अनुचित प्रतीत होता है, तो अपना मंतव्य टिप्पण में रख देना चाहिए, न कि मूल पाठ को हटाकर अपना इष्ट पाठ रख देना आदि।

आगे भी ऐसे ही श्री गौतमस्वामी की कृतियों में जो परिवर्तन व संशोधन किये गये हैं, उन पर चर्चा की जावेगी।

श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन-परिवर्धन उचित नहीं है

(१) करोम्यहं—आजकल कुछ साधु-साध्वियां ''**कुर्वेऽहं**'' क्रिया को पढ़ने लगे हैं किंतु मुझे यह संशोधन नहीं जँचा है अतः मैंने यहाँ ''**करोम्यहं**'' ऐसा आचार्य प्रणीत प्राचीनपाठ ही सर्वत्र रखा है।

सिद्धांतचक्रवर्ती श्रीवीरनंदि आचार्य ने आचारसार ग्रंथ में ''**करोम्यहं**'' पाठ ही लिया है। यथा-''**क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहं**[१]।''

अनगार धर्मामृत में पाक्षिक प्रतिक्रमण के लक्षण की स्वोपज्ञटीका में ''**करोम्यहं**'' क्रिया का प्रयोग पंद्रह बार आया है। उदाहरण के लिये देखिये–

''**सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां..... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं**[२]।'' इत्यादि।

क्रियाकलाप में देववंदना, दैवसिक प्रतिक्रमण, पाक्षिकप्रतिक्रमण एवं अन्य क्रियाओं की प्रयोगविधि में ''**करोम्यहं**'' पाठ ही उपलब्ध है।

चारित्रसार ग्रंथ में भी-"**चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य** .....इत्यादि पाठों में ''**करोमि**'' क्रिया ही है। ऐसा ही सामायिक भाष्य ग्रंथ एवं प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में भी ''**करोमि, करोम्यहं**'' पाठ ही उपलब्ध हो रहे हैं। कुल मिलाकर सभी ग्रंथों में इस परस्मैपदी ''**करोमि**'' क्रिया ही उपलब्ध हो रही है पुनः इसे बदलकर ''**कुर्वेऽहं**'' पाठ क्यों रखा गया? यह विचारणीय है।

(२) ''**णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं**' पाठ सामायिक दण्डक में है यहाँ 'तवाणं' पाठ बढ़ाया है सो उचित नहीं है देखिये प्रमाण–

''**णाणाणमित्यादि–ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणानामानन्त्य–संभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतम्।**''

(क्रियाकलाप पृ. १४६)

इससे स्पष्ट है कि '**तवाणं**' पद मूल में नहीं है। टीकाकारों ने भी नहीं माना है।

(३) ऐसे ''**कीरंतं पि ण समणुमणामि**'' पाठ के स्थान पर–

''**अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि**'' पाठ श्री गौतमस्वामी की कृति में सुधारना सर्वथा अनुचित है।

(४) इसी प्रकार–

''**वंदामि रिट्ठणेमिं**'' पाठ ही थोस्सामि स्तव में सर्वत्र मान्य है।

श्रमणचर्या के प्रथम संस्करण में–

'**वंदाम्यरिट्ठणेमिं**' किया है। पुनः द्वितीय संस्करण में ''**वंदे अरिट्ठणेमिं**'' किया है।

इस परिवर्तन पाठ को पढ़ना उचित नहीं है।

१. आचारसार पृ. १९१। २. अनगार धर्मामृत मूल संस्कृत अ. ९ पृ. ६५७।

(५) सामायिक भाष्य में चैत्यभक्ति की अंचलिका की टीका में देखिए–

''**अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि।**'' (सामायिक भाष्य पृ. १७५)

टीकाकार ने भी प्राचीन पाठ ही लिया '**अंचेमि**' आदि। अतः–

श्रमणचर्या में पृ. १०२ पर–

''**अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि।**'' पाठ सुधारना कहाँ तक उचित है।

(६) इसी तरह ''**सल्लेहणामरणं**'' के अनंतर ''**तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि**'' पाठ हटाकर ''**इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि**'' बढ़ाना उचित नहीं है। मूल पाठ जो क्रियाकलाप' आदि ग्रंथों में चला आ रहा है। उसे ही पढ़ना चाहिये।

ऐसे ही एक पाठ परिवर्तन और है जो कि अतीव विचारणीय है–मूल पाठ है–'**से अभिमदजीवाजीवउवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जरबंधमोक्खमहिकुसले।**'

अब इसे बदल कर ऐसा पाठ रखा गया है—'**से अभिमदजीवाजीवउवलद्ध-पुण्णपावआसवबंधसंवरणिज्जरमोक्खमहिकुसले।**'

मूलपाठ में नवतत्त्वों का क्रम यह था-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

परिवर्तित पाठ का क्रम ऐसा हो गया है जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

विचार करने से यह समझ में आता है कि—इस मूलपाठ के क्रम के अनुसार ही कुंदकुंददेव ने समयसार में गाथा रखी है—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं।।१३।।

और इसी गाथा के क्रम के अनुसार ही श्रीकुंदकुंददेव ने समयसार में अधिकार विभक्त किये हैं। जीवाजीवाधिकार के बाद पुण्य-पापाधिकार है पुनः आस्रव अधिकार, संवर अधिकार, निर्जरा अधिकार लेकर तब बंध अधिकार है इसके बाद मोक्ष अधिकार है।

(८)	**क्रियाकलाप**	**पृ.**	**श्रमणचर्या**	**पृ.**
	देवा वि तस्स पणमंति	६६	**देवा वि तं णमंसंति**	४०

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में टीकाकार ने यही क्रियाकलाप वाला पाठ रखकर इसी की टीका की है। जैसे–

''**देवा वि तस्स पणमंति-देवा अपि तस्य प्रणमंति।**'' इस प्रकार अनेक संशोधन वर्तमान में किये जा रहे हैं किन्तु विचार करने की बात है कि इन टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य तक तो यह प्राचीन पाठ ही प्रमाणभूत माना गया है और श्रीटीकाकार भी प्राकृत-संस्कृत व्याकरण व छंद शास्त्रादि के ज्ञाता अवश्य थे फिर भी उन्होंने यह पाठ नहीं बदला है। आजकल ऐसे ही अनेक संशोधन हुये हैं जो कि हमें इष्ट नहीं हैं।